कोलकाता

अ पोर्ट्रेट इन ब्लैक ऐण्ड ब्लड

शमीम हनफ़ी

किताबों में लिखा है: जिस दिन भगवान शिव की पत्नी सती ने प्राण त्यागे, शिव की आत्मा दुःख से निढाल भी हुई और जलती-झुलसती ज्वाला समान क्रोध और उत्तेजना से लाल भी। कांधे पर सती की बेजान काया संभाले दुनिया में चारों ओर शिव नाचते फिरे। समय जैसे-जैसे बीतता जाता था नाच की गति तेज़ होती जाती थी। और विनाश के उस नृत्य की गति के साथ-साथ क्रोध की ज्वाला निरन्तर ऊँची और ऊँची होती गयी। तब देवताओं को ध्यान आया — भगवान शिव के कांधों पर सती की काया अगर इसी तरह रखी रही तो संसार उनके क्रोध की अग्नि में भस्म हो जाएगा। किताबों में लिखा है कि तब विष्णु भगवान ने कटार उठाई और पूरी शक्ति के साथ उसे सती की काया की ओर उछाल दिया। फिर वह काया बावन टुकड़ों में बँटी और ये टुकड़े सारी धरती पर जहाँ तहाँ बिखर गए। बँगला भूमि की एक महान नदी के किनारों पर सती के दाएँ पैर की एड़ी गिरी। श्रद्धालु भक्तों ने उस स्थान को पवित्र जाना और वहाँ काली के मन्दिर की स्थापना की। सो धरती का वह टुकड़ा काली कत्ता कहलाया और उसने सारे जगत में अपनी महिमा का शंख बजाया...

काला चमकीला बदन, गुस्सैल आँखें, लहू में डूबी फुनकारती जीभ, गले में इन्सानी खोपड़ियों की माला और हार की तरह लिपटे हुए साँप, चार हाथों में से एक में नंगी तलवार, एक में कटा हुआ इंसानी सर, लहू की बूँदे टपकाता, भगवान शिव के शरीर पर एक पैर से खड़े वह नाचती रहती है। काली... सबसे महान, असीम, ख़ौफ़नाक और हर काम करने में सक्षम, रात जिसकी अंधी गुफ़ा में सब कुछ डूब जाता है।

कलकत्ता: ख़ौफ़, दहशत, अँधेरे और उत्तेजना का शहर। फ़ज़ा की बुलन्दियों से नीचे देखो तो दूर-दूर तक हरियाली दिखाई देती है, कहीं गहरी सियाही, कहीं पीलाहट लिए हुए। लेकिन ये सारा रंग प्रदर्शन अभिव्यक्ति के लिए बेचैन एक अनदेखी ऊर्जा का रूपक है। फिर इन्हीं हरियालियों में यहाँ-वहाँ चमकता, चौंकता, कौंधता हुआ पानी। झीलें, नहरें और नदियाँ और एक तरफ़ हद्दे-नज़र तक फैली हुई चाँदनी की चादर। एक नन्हा सा बिंदु इस लैंडस्केप में धीरे-धीरे फैलता जाता है और एक शहर की तस्वीर उभरती है। कुत्ते के पैर जैसी आकृति रखने वाली चौड़ी भूरी नदी के गिर्द बसा हुआ यह शहर, साहिलों पर लंगर डाले कश्तियाँ और जहाज़, बड़ी बड़ी क्रेनें, मिलों की चिमनियाँ और कारख़ानों की ज़ंग-आलूद लोहे की छतें। फिर ज़रा और नीचे आने पर ताड़ के झुण्ड दिखाई देते हैं। एक तरफ़ से झुण्ड से उभरता हुआ ब्रिटिश राज की यादों में बसे हुए पुराने गिरजे की सफ़ेद ख़ामोश मीनार, दूसरी तरफ़ बैलगाड़ी पर भारी बोझ लादे, बैलों को ठोंगे लगाता काली — कत्थई जिल्द वाला मज़दूर। यह शहर द्वन्द्व का है और अनोखे टकराव भरे तजुर्बों का। रौशन-रौशन सड़कें और अंधी गलियाँ। कहीं दौलत की रेल-पेल और ऐश का नंगापन, कहीं ग़रीबी, बदहाली, बीमारी और भूख। श्रद्धा और अंधविश्वासों के तिलिस्मी महल और भाले की नोक की तरह सीने में उतरती हुई झुग्गियाँ। एक तरफ़ दूर तक फैला हुआ लम्बा-चौड़ा मैदान है जो तक़रीर और तफ़रीह के शौक़ीन चेहरों की छलकती हुई भीड़ से भर जाने के बाद और भी फैला हुआ नज़र आता है, दूसरी तरफ़ दरबों जैसी खोलियों में सूखे ईंधन जैसे बेरौनक़ जिस्मों के अम्बार, जहाँ उजाला है न हवा। ख़्वाहिशों ने किसी और के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी है।

हुगली नदी के किनारे तीस मील की लम्बाई में बसा हुआ महानगर, अस्सी लाख से ऊपर आबादी जिसके जवाब में सिर्फ़ टोकियो, लन्दन और न्यूयॉर्क के नाम लिए जा सकते हैं, लेकिन कलकत्ता के दिल में उनसे कहीं ज़्यादा भेद छिपे हुए हैं और आँखों में उनसे कहीं ज़्यादा वहशतें आबाद हैं। यहाँ लाखों खुले आसमान के नीचे अपनी पूरी उम्र गुज़ार देते हैं, फुटपाथ पर पैदा होते हैं, जवान होते हैं, बच्चे पैदा करते हैं और मर जाते हैं। यहाँ ग़रीबी ऐसे रंग-रूप साथ लेकर आती है कि बहुतेरे इस नज़ारे की ताब नहीं ला सकते। यहाँ हिंसा है, वहशत है और टकराव है। दूसरी तरफ़ तन्ज़ीम है, धीमापन है और घर की चौखट पर उस पुरानी मिट्टी की महक है जिससे दूसरे बड़े शहर, यहाँ तक कि सदियों के तजुरबात से गुज़री हुई दिल्ली भी ख़ाली होती जा रही है। कलकत्ता व्यापार और उद्योग के एतबार से हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा शहर है और चेतना की जागृति का सबसे बड़ा केन्द्र।

ऐसा न होता तो कलकत्ता के इतिहासकार इससे इतने ख़ौफ़ज़दा न होते। महानगर के अपने वासियों को छोड़कर बेशतर ने कलकत्ता का ज़िक्र या तो डर में डूबे लफ़्ज़ों में किया है या हिक़ारत, नफ़रत और बेयक़ीनी की ज़ुबान में। ब्रिटिश राज के एक सरकारी संवाददाता, सर जॉर्ज ट्रेवेलियन ने 1863 में लिखा कि कलकत्ते से ज़्यादा उदासीन बस्ती दुनिया की चारों दिशाओं में और कोई नहीं। इसे फ़ितरत ने जितना बुरा और ग़ैर-सेहतमन्द बना दिया है उस पर कोई इज़ाफ़ा इन्सान के बस की बात नहीं। किपलिंग ने इसे ख़ौफ़नाक और डरावनी रातों का शहर कहा था। नवाब क्लाइव के ख़याल में ये कायनात की सबसे बुरी बस्ती थी, लेकिन इसी नस्ल के एक नुमाइंदे विलियम हंटर ने एक रात अपनी मँगेतर को जो मुहब्बतनामा भेजा उसमें ये लफ़्ज़ भी शामिल थे:

> तसव्वुर करो उन तमाम चीज़ों का जो फ़ितरत में सबसे शानदार हैं और उसके साथ-साथ उन तमाम अनासिर का जो तामीर के फ़न में सबसे ज़्यादा हसीन होते हैं, फिर तुम अपने आप कलकत्ता की एक धुंधली सी तस्वीर देख लोगी।

उन्नीसवीं सदी के दूसरे सिरे पर चर्चिल ने अपनी माँ से कहा था — कलकत्ते को देखकर मुझे हमेशा ख़ुशी होगी क्योंकि इसे एक बार देखने के बाद दोबारा देखने की ज़रूरत नहीं रह जाती। ये एक अज़ीम शहर है और रात की ठण्डी हवा और सुरमई धुन्ध में ये लन्दन जैसा दिखाई देता है।

कलकत्ता और लन्दन की मुमासिलत का कुछ ऐसा ही नक़्शा मुग़ल अशराफ़ियत के सबसे मुहज़्ज़ब नुमाइन्दे ग़ालिब के ज़ेहन में भी उभरा था। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में, जब ब्रिटिश राज की स्थापना की तैयारियाँ कम्पनी के फ़रज़न्दों ने तक़रीबन मुकम्मल कर दी थीं और मुग़ल हुक्मराँ की सत्ता और मध्यकालीन संस्कृति की बिसात सिमटती जा रही थी, ग़ालिब 1826 के माह नवम्बर या दिसम्बर में दिल्ली से रवाना हुए और 21 फ़रवरी 1827 को कलकत्ता पहुँचे। गवर्नर जनरल बइजलासे-कौन्सिल के सामने उन्हें अपना पेन्शन का मुक़द्दमा पेश करना था।

> कलकत्ते में लोगों ने उनकी बहुत ख़ातिर मदारत की और उनको कामयाबी की उम्मीद दिलाई। स्टर्लिंग साहब सेक्रेटरी गवर्मेण्ट हिन्द ने जिनकी तारीफ़ में मिर्ज़ा का फ़ारसी क़सीदा उनके कुलियात में मौजूद है, वादा किया था कि तुम्हारा हक़ ज़रूर तुमको मिलेगा। कोलबर्क साहब जो उस वक़्त दिल्ली में रेज़िडेन्ट थे, उन्होंने दिल्ली में मिर्ज़ा से उम्दा रिपोर्ट करने का इक़रार कर लिया था। उन उम्मीदों के धोखे में वह पूरे दो बरस कलकत्ते में रहे, मगर आख़िरकार नतीजा नाकामी के सिवा कुछ न हुआ।
>
> — *यादगार-ए-ग़ालिब*

इस नाकामी को नज़रअंदाज़ कर दें तो भी सफ़र में भी ग़ालिब ने बहुत रंज खींचे थे, दरियाई सफ़र का शौक़ था मगर उस पर ख़र्च बहुत उठता, सो घोड़े पर बहुत सारा रास्ता तय किया। कलकत्ता पहुँचे तो शिमला बाज़ार में दस रुपये महीना पर मकान एक सुथरा, कुशादा और आरामदेह मिल गया। आब-ओ-हवा तबियत को मुवाफ़िक़ थी। शहर आबाद, बाज़ार बारौनक़। मुल्क-मुल्क के सामान से दुकानें भरी हुईं। अंग्रेज़ों के हुनर और ख़ूबियों से इस हद तक मुतास्सिर हुए कि इस क़ौम के तौर-तरीक़ों, आविष्कारों, नई खोजों, तर्ज़े-ज़िन्दगी और उनकी औरतों के रंग-रूप सब के आशिक़ हो गए।

कलकत्ते का जो ज़िक्र किया तूने हमनशीं
इक तीर मेरे सीने में मारा कि हाय हाय
वह सब्ज़ाज़ार[1] हाए मुतर्रा[2] कि है ग़ज़ब
वह नाज़नीं बुताने-खुद आरा कि हाय हाय

सब्र आज़मा वह उनकी निगाहें कि हफ़-नज़र[3]
ताक़त रुबा[4] वह उनका इशारा कि हाय हाय
वह मेवा-हाए ताज़ा-ओ-शीरीं कि वाह! वा!
वह बादा[5]-हाए नाबे-गवारा[6] कि हाय हाय

1. हरा भरा मैदान 2. बारिश
3. नज़र न लगे 4. खींचने वाला 5. शराब
6. शुद्ध और मन पसन्द

फिर इसी दयार में ग़ालिब ने सबसे पहले भाप से चलने वाला इन्जन, बग़ैर तेल के रौशन होने वाले बर्क़ी चराग़ (बिजली का बल्ब), परिन्दों की सूरत उड़ कर एक जगह से दूसरी जगह पहुँच जाने वाले हर्फ़ों का तिलिस्म और मिज़राब का सहारा लिए बग़ैर बजने वाला मशीनी बाजा, ग़रज़ कि तरह-तरह की अनोखी चीज़ें देखीं और उनको सराहा। इसीलिए जब नई अक़लियत के सबसे मशहूर मुस्लिम नुमाइन्दा सर सैय्यद ने *आईन-ए-अकबरी* (अकबर का संविधान) का तर्जुमा किया और ग़ालिब से उस पर प्रस्तावना लिखने की फ़रमाइश की तो मुग़ल रईसज़ादे ने तामील तो कर दी लेकिन ये मशविरा भी दिया कि मियाँ हर ज़माना अपना आईन अपने साथ लाता है और पुराने को बीते हुए कल की चीज़ ठहराता है। ज़रा लन्दन की तरफ़ नज़र करो तो पता चलेगा कि दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गयी।

फिर कलकत्ते में उन दिनों शे'र-ओ-शायरी की चर्चा भी बहुत थी। मदरसा-ए-आलिया और फ़ोर्ट विलियम कॉलेज जैसी संस्थाएँ थीं जहाँ मशरिक़ी उलूम (पूर्वी ज्ञान) और ज़ुबानों की तरक़्क़ी और सरपरस्ती के सामान मुहय्या थे। दिल्ली वाले मीर अम्मन भी उर्दू ज़ुबान के अंग्रेज़ सरपरस्तों की नवाज़िशों की शोहरत सुन कर ग़ालिब से बरसों पहले कलकत्ता गए थे।

> जो शख़्स सब आफ़तें सह कर दिल्ली का रोड़ा हो कर, जिसकी दस-पाँच पुश्तें उस शहर में गुज़रीं, और उसने दरबार उमराओं के और मेले-ठेले, उर्स छड़ियाँ, सैर-तमाशे और कूचा गर्दी उस शहर की मुद्दत तलक की होगी, और वहाँ से निकलने के बाद अपनी ज़ुबान को लिहाज़ में रखा होगा, उसका बोलना अलबत्ता ठीक है। ये आजिज़ भी हर एक शहर की सैर करता और तमाशा देखता यहाँ तक पहुँचा है।
>
> — *बाग़-ओ-बहार*

लेकिन सौ बात की एक बात ये है कि आदमी चाहे जितना आगे जाए बीते दिनों और तजुर्बों की परछाईं उसके साथ-साथ चलती है। सो मीर अम्मन ने लफ़्ज़ों का जो बाग़ लगाया उसकी जड़ों में महक शहरे-दिल्ली के कूचा-ओ-बाज़ार की थी और ग़ालिब ने कलकत्ते में जो दो बरस गुज़ारे उन पर छूट उसी तहज़ीब की पड़ी रही थी, जिसे वह आईन-ए-गुज़िश्ता (गुज़रे हुए कल का संविधान) समझ रहे थे। शे'र-ओ-सुख़न की महफ़िलें जमतीं। ज़ुबान दानी के जौहर दिखाए जाते। ग़ालिब का "है जो साहब के कफ़े-दस्त (हथेली) पे ये चिकनी डली" वाला क़त्आ कलकत्ता-प्रवास की यादगार है।

> तक़रीब ये कि मौलवी करम हुसैन साहब एक मेरे दोस्त थे; उन्होंने एक मजलिस में चिकनी डली, बहुत पाकीज़ा और बेरेशा, अपने कफ़े-दस्त पर रख कर मुझसे कहा कि इसकी कुछ तश्बीहात (उपमा अलंकार) नज़्म कीजिए। मैं ने वहाँ बैठे-बैठे नौ-दस शे'र का क़त्आ कह कर उनको दिया और सिले में वह डली उनसे ली।
>
> — *मक्तूबे-ग़ालिब बनाम मिर्ज़ा हातिम अली महर*

ऐसा लगता है कि क्या पेन्शन का मुक़द्दमा और क्या साइन्सी करिश्मे और आधुनिकताएँ, सब कुछ भूल-भाल कर ग़ालिब मिज़ाज से मुनासिबत रखने वाले मशग़लों में डूब गए। कम्पनी के मदरसे में एक बज़्मे-सुख़न क़ायम

हुई थी जहाँ हर महीने के पहले इतवार को मुशायरा होता। ग़ालिब भी उनमें शरीक होते और अपने शे'र सुनाते। जलने वालों ने सोचा कि एक दिल्ली से आया हुआ परदेसी सारी दाद लूटे ले रहा है सो उन्होंने ग़ालिब के कलाम में ज़ुबान-ओ-बयान की ग़लतियाँ निकालीं। ग़ालिब मुसाफ़िर थे और मोहताज मगर मामला ज़ुबानदानी का आ पड़ा था और उलझ गए। ख़ूब मारका छिड़ा। तंग आकर फ़ारसी मसनवी 'बादे-मुख़ालिफ़' (विरोधी हवा) लिखी और अहले-कलकत्ता की नामेहरबानी और बेमुरव्वती का शिकवा किया।

ऐ कलकत्ता के सुख़न परवरो और ज़ुबान आवरो
रस्मे-दुनिया है कि दोस्तों के काम बनाते हैं
मेहमान को नवाज़ते हैं
परदेसियों पर सितम कब रवा है
अगर रहम नहीं करते, न करो,
लेकिन ये सितम, क्या मानी?

अनोखा इत्तेफ़ाक़ है कि उर्दू के सबसे बड़े शायर के सफ़रे-कलकत्ता के ठीक पन्द्रह बरस बाद फ़्रांस का एक आवारा मिज़ाज शायर भी लम्बे, जानलेवा फ़ासलों को पार करता हुआ पहुँचा। ग़ालिब का सफ़र भौतिक ज़रूरतों का नतीजा था। बॉदेलेयर के सफ़र की ग़रज़ मनोवैज्ञानिक थी। छह बरस की उम्र में उसके बाप की मौत और माँ की दूसरी शादी उसके लिए एक जज़्बाती मसला बन गई। उसकी आवारागर्दी और नौजवानी की बेराह रवी, फिर पेरिस के थियेटरों, कॉफ़ी हाउसों और तवायफ़ के कोठों की विध्वंसक ज़िन्दगी से तंग आकर उसके घर वालों ने सोचा कि उसे दूर पूरब की रहस्यमय बस्तियों में भेज दिया जाए। ग़ालिब के लिए कलकत्ते के कैनवस पर भौतिक कमाल के प्रदर्शन से वाक़िफ़ियत एक नया तजुर्बा थी। और वह इसके जादू में डूबे भी और उसके रोब में भी आए। बॉदेलेयर भौतिक कमाल में छिपी हुई पस्ती को पहचानता भी था और उसका शिकार भी था। और पूरब की एक रहस्यमय सरज़मीन के एक शहर में उसका आना उसके लिए एक दूसरी क़िस्म का तजुर्बा बन गया।

यहाँ उसका ठहरना एक साल से कुछ कम अरसे के लिए ही रहा। एक तो वैसे ही कच्ची उम्र में ऐसे दूर-दराज़ के सफ़र से ऐन मुमकिन था कि उसकी तबीयत में एक तब्दीली होती। दूसरे उसके कलाम से और उसकी अमली ज़िन्दगी से साफ़ ज़ाहिर है कि उसके कच्चे और नाबालिग़ ज़ेहन पर साँवले/सलोने बंगाल के जादू ने एक ख़ास असर किया। काली के मन्दिर को भी उसने देखा होगा। और देवमाला के उस अफ़साने में प्रताड़ना का जो फ़लसफ़ा छुपा है उसके रहस्यमय और जादुई ख़ौफ़ ने उसके दिल में सदियों की दबी हुई वहशी इन्सान की फ़ितरी तहरीकों को नए तरीक़े से अछूते अन्दाज़ में बेदार कर दिया होगा...

> बॉदेलेयर के लिए जिन्सी ऐश कोई नई चीज़ न थी। लेकिन नए माहौल में औरत की दिलकशी उसे एक अछूते रंग में दिखाई दी। काली देवी और उसके अफ़सानों से उसे कौन सी दिलचस्पी महसूस हुई? साँवले-सलोने हुस्न में उसे क्या दिलकशी दिखाई दी? इसका स्पष्ट जवाब तो नहीं दिया जा सकता, अलबत्ता अन्दाज़े और इशारे ही किए जा सकते हैं।
>
> — *मशरिक़ व मग़रिब के नग़्मे*

और अब बॉदेलेयर की एक नज़्म के चन्द मिसरे जो मीरा जी की मीरा सेन की एक लरज़ती तस्वीर भी है:

उसकी हर बात काले रंग की है। वह तो रूहे-शबाना[7] दिखाई देती है,
रूहे-तीरगी[8]। उसकी आँखें गुफ़ाएँ हैं जिनकी गहराई में असरार-दरख़्शाँ[9]
हैं लेकिन उन आँखों की निगाहें बिजली की तरह हैं, एक चमकारा जो
रात के परदे को चीर दे वह एक महरे-आबनूसी है, एक नज़्मे-सियाह[10]!
और इसके बावजूद नौ-रू ख़ुशी की किरनें उसमें से फूट रही हैं, बल्कि वह
एक ऐसे चाँद की तरह है जिसने उसे अपना लिया है। उसके नन्हें से सर में
एक आहनी कूव्वते-इरादी पिन्हाँ[11] है और एक तश्नगी[12] शिकार की। फिर भी

7. रात की आत्मा
8. अंधेरेपन की आत्मा
9. रहस्य दिखते हैं
10. काला सितारा
11. फ़ौलादी इच्छा शक्ति छिपी है

उसके वहशी चेहरे में, जहाँ गुफ़ाओं जैसे नथुने तिलिस्मी साँसें ले रहे हैं, सुर्ख़-ओ-सफ़ेद और प्यारा शीरीं दहन[13] रंग से दमक रहा है, यूँ — जैसे ज्वालामुखी के किनारे पर किसी फूल की शोभा!

12.प्यास 13.मीठे होंट

— *तर्जुमा*: मीरा जी

II

कलकत्ता अभी बहुत दूर था।

सरल ने थक कर आँखें बन्द कर लीं और कलकत्ते का तसव्वुर करना चाहा जहाँ वह बिल आख़िर पहुँचने वाला था। महलों का शहर। सोने और चाँदी की बस्ती, मशरिक़ का लन्दन। अब रात हो रही थी। बंगाले का जादुई चाँद पानी की सतह पर कश्ती के साथ-साथ तैरता जाता था। मांझी अपनी ज़ुबान में गा रहे थे। उनकी आवाज़ सरल को ग़ैरमामूली तौर पर सुरीली मालूम हुई।

— क़ुर्रतुल ऐन हैदर: *आग का दरिया*

जॉब चारनॉक ने जिस रोज़ हुगली के मशरिक़ी किनारों पर अपने ख़ेमे लगाए थे और कलकत्ते का ख़्वाब नामा तरतीब दिया (और कुछ अरसे बाद उस ख़्वाब की तकमील के लिए एक हिन्दुस्तानी औरत ब्याह ली) उससे इक्यासी बरस पहले हेनरी हडसन के हाथों न्यूयॉर्क की तारीख़ का हर्फ़े-आग़ाज़ लिखा जा चुका था। मॉन्ट्रियल आधी सदी पहले बसाया जा चुका था। इस तरह कलकत्ता दुनिया के सबसे कमसिन शहरों में से एक है, साथ ही इन्सान की सबसे पुरानी तहज़ीबों में से एक का आईनाख़ाना भी है, क़दीम-ओ-जदीद, पुरातन और आधुनिक का संगम। और इस संगम में पानी की वह अनदेखी धारा, जो सरस्वती की तरह अपना वजूद रखती है मगर निगाह से ओझल है, गुज़रे हुए कल और आज के साथ आने वाले कल का इशारिया है, बज़ाहिर गुम है लेकिन दिल की तरह धड़कती हुई। त्रिमुखी कलकत्ता का तीसरा किनारा। एक सच्ची कहानी का तीसरा अध्याय जो हर्फ़-हर्फ़ हवा की तख़्ती पर लिखा हुआ है। कहानी का ये सफ़ा आने वाली नस्लें पढ़ेंगी।

जॉब चारनॉक की आमद 1655 में हुई। 1663 में जब वह पटने में एक कारख़ाने का निगराँ था, एक रोज़ घूमता-फिरता उस जगह जा पहुँचा जहाँ एक चिता रौशन थी। और एक ख़ूबसूरत औरत मीरया जिसे रिश्तेदारों ने शौहर की लाश के साथ सती हो जाने का हुक्म दिया था, अचानक आँखों के रास्ते चारनॉक के दिल में उतर गई। इससे पहले कि वह दहकती हुई आग में जस्त लगाती चारनॉक ने झपट कर उसे सँभाल लिया। फिर वह उसे हुगली ले गया और साथ-साथ दोनों ज़िन्दगी का सफ़र तय करने लगे। कहते हैं कि मीरया की वफ़ात के बाद हर साल चारनॉक उसकी क़ब्र पर एक मुर्ग़ की क़ुरबानी देता था।

कप्तान एलेक्ज़ैण्डर हैमिल्टन से रवायत है कि सती के शोलों से एक ख़ूबसूरत जवान औरत की जान बचाने वाला रहमदिल जॉब चारनॉक किसी रियासती हुक्मराँ से ज़्यादा ख़ुदसर, अक्खड़ था। जब वह खाने की मेज़ पर बैठता तो उसके हुक्म से ड्रॉइंग रूम के बाहर मक़ामी बाशिन्दों को तफ़रीहन कोड़े लगाए जाते ताकि वह उनकी दहशतज़दा चीख़ें सुनता रहे और लुत्फ़ अन्दोज़ होता रहे।

कुछ मायनों में कलकत्ता की कहानी हिन्दुस्तान की कहानी है, बल्कि तीसरी दुनिया की एक मुख़्तसर तस्वीर। ये तस्वीर बताती है कि साम्राज्य क्यों और कैसे वजूद में आते हैं और जब हवा के एक सरकश झोंके के साथ ये भूतकाल के धुन्ध में खो जाते हैं तो क्या होता है? कलकत्ता की कहानी औद्योगिक क्रान्ति की कहानी है। तीसरी दुनिया के उन बाशिन्दों की कहानी जो निजात के पुराने नुस्ख़ों को आज़माने के बाद एक नए यक़ीन की जोत जगा रहे हैं।

कहते हैं कि कलकत्ता उस पर चोटें लगाने वाला शहर है। पहले इसके एक सिरे पर अंधविश्वासों का तिलिस्म आबाद था, दूसरे सिरे पर सच्चाइयाँ और कितनों ही के लिए उन दो रेखाओं के बीच का इलाक़ा टोबा टेक सिंह के उस No Man's Land की मानिन्द था जिस पर किसी का एख़्तेयार न था, जिसका न कोई ख़ुदा था न हाकिम। यह अतिवादियों का शहर है। सबसे पहले इसी शहर ने औद्योगिक तरक़्क़ी और एक नई फ़िक्र

के तत्त्व अपने लहू में ज़ज़्ब किए। और सबसे पहले इसी शहर में इन्क़लाब और बग़ावत की चिन्गारियाँ रौशन हुईं। उन दिनों जब ब्रिटिश राज की अज़मत का सूरज सरों पर पूरी आब-ओ-ताब के साथ चमक रहा था, उसकी धूप में छुपे अंधेरे के निशान सबसे पहले कलकत्ता ने दरयाफ़्त किए। *इंग्लिशमैन*, *बंगाल हरकारू*, *कलकत्ता रिव्यू*, *हिन्दू पेट्रियट*, *फ्रेंड ऑफ़ इण्डिया* नए इन्क़लाबी शऊर के पहले ढिंढोरची थे। प्रतिरोध और इन्कार की हर लहर बंगाल की सुनहरी धरती से उठी और देखते-देखते सारे मुल्क को अपनी लपेट में ले लिया। काली को देवताओं ने इसलिए जन्म दिया था कि वह तबाही की तमाम ताक़तों का सर कुचल दे। ब्रिटिश राज उस ताक़त का सबसे स्याह स्रोत था। 18 मई 1857 को लॉर्ड कैनिंग ने ऐलान किया कि बंगाली अख़बारात राज के ख़िलाफ़ नफ़रत और ग़ुस्से का फ़साद फैला रहे हैं, सो उन्हें इस दुस्साहस की सज़ा दी जाए। *समाचार दर्शन* को कुचल दिया गया। *बंगाल हरकारू* पर मुक़द्दमा चलाया गया। बंगाली अदीबों ने गुमनाम तरीक़ों से ये शम्मा रौशन रखी कि जब मामला उसूलों की जंग तक पहुँच जाए तो आदमी आदमी नहीं रह जाता, अक़ीदा (श्रद्धा) और ख़्वाब बन जाता है। दीन बन्धु मित्र ने अपने ड्रामे *नील दर्पण* को इस तरह प्रकाशित किया कि इसके लफ़्ज़ों में उनके अपने चेहरे की जगह बंगाल की सारी धरती का चेहरा झाँक रहा था। कलकत्ते में राम नारायन ताराकान्ता के ड्रामे *क्लीन सरोसो* का मंचन होना था कि बैरकपुर की फ़ौजों में बग़ावत का ज़हर फैल गया।

कहानी का ये सफ़ा भी इसी शहर को समर्पित है जिसने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज, बंगाल एशियाटिक सोसायटी, हिन्दू कॉलेज, मदरसा-ए-आलिया जैसे इदारों को एक नई रोशनी का अलमबरदार समझ कर सीने से लगाया था। जहाँ सर विलियम जोन्स, ड्यूड हेयर और राजा राम मोहन राय कंधे से कंधा मिलाकर तामीर के एक नए मंसूबे, एक पिछड़े मुल्क की क़यादत के कारनामे अंजाम दे चुके थे। उन्नीसवीं सदी के शुरू में (1813) जब बरतानवी पार्लियामान के वसीले से कम्पनी बहादुर ने हिन्दुस्तानी इल्म-ओ-अदब की तरक़्क़ी के लिए एक लाख का क़ीमती दान दिया उस वक़्त सबसे पहले राजा राम मोहन राय ने ही ये शिकायत की थी कि:

> हमें पूरी उम्मीद थी कि ये रुपया हिन्दुस्तानियों को मुख़्तलिफ़ जदीद उलूम से रूशनास (ज्ञान से परिचित) कराने के लिए ज़हीन और क़ाबिल यूरोपियन उस्तादों पर ख़र्च किया जाएगा... लेकिन अब हमें मालूम हुआ कि हिन्दू पंडितों की निगरानी में एक संस्कृत मदरसे की स्थापना के सिलसिले में कम्पनी ये रुपया ख़र्च कर रही है... सभी जानते हैं कि इसी ज़ुबान ने सदियों तक हिन्दुस्तानियों के लिए सही इल्म हासिल करने की राह में रुकावटें पैदा कीं।
>
> — पर्सिवल ग्रिफ़िथ्स: *मॉडर्न इण्डिया*

इस वाक़ये के कोई छप्पन बरस बाद मुसलमानों में जदीद तहज़ीबी नवजागरण के सबसे बड़े नुमाइन्दे सर सैय्यद अहमद ख़ान ने अलीगढ़ साइंटिफ़िक सोसायटी के नाम लन्दन से भेजे गए एक ख़त (15 अक्तूबर 1869) में लिखा था कि:

> हम जो हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों को बदएख़लाक़ी का मुल्ज़िम ठहराकर (अगरचे अब भी मैं इस इल्ज़ाम से उनको बरी नहीं करता) ये कहते थे कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तानियों को बिल्कुल जानवर समझते हैं और निहायत हक़ीर जानते हैं, ये हमारी ग़लती थी। वह हमको समझते ही न थे बल्कि दर हक़ीक़त हम ऐसे ही हैं। मैं बिला मुबालग़ा निहायत सच्चे दिल से कहता हूँ कि तमाम हिन्दुस्तानियों को आला से लेकर अदना तक, अमीर से लेकर ग़रीब तक, आलिम फ़ाज़िल से लेकर जाहिल तक, अंग्रेज़ों की तालीम-ओ-तरबीयत और शाइस्तगी के मुक़ाबले में दर हक़ीक़त ऐसी ही निस्बत है जैसी निहायत लायक़ और ख़ूबसूरत आदमी के सामने निहायत मैले-कुचैले जानवर को...

दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ क़ौम के एक फ़रज़न्द (पर्सिवल स्पीयर: *ट्वाइलाइट ऑफ़ द मुग़ल्स*) को दुःख था कि क़ौमी हुकूमत के ख़ात्मे के बाद हिन्दुस्तानी समाज में तालीम का मतलब बस अँग्रेज़ी ज़ुबान में ज़रा सी शुद-बुद पैदा कर लेना और मग़रिबी तर्ज़े-ज़िन्दगी की अंधी तक़लीद (नक़्ल) रह गया है।

और अवध के आख़िरी ताजदार जाने-आलम पिया वाजिद अली शाह कलकत्ते में बैठे अख़्तर का मर्सिया

लिख रहे थे।

दिले-ज़ार[14] हरगिज़ सँभलता नहीं
वो कोहे-गिराँ[15] है कि टलता नहीं
हर इक सिम्त पहरा हर इक सिम्त यास[16]
रफ़ीक़-ओ-मुलाज़िम में ख़ौफ़-ओ-हरास
कभी सर पे रखता था मैं कज कलाह[17]
अवध का कभी मैं भी था बादशाह
मुलाज़िम कभी थे मेरे सौ हज़ार
मेरे हुक्म में थे प्यादा सवार
हुए क़ैद इस तरह हम बेगुनाह
असीरों[18] में हूँ नाम है बादशाह

14. रोता हुआ दिल 15. बड़ा पहाड़
16. ना उम्मीदी 17. तिरछी टोपी
18. क़ैदियों

रवायत है (ज्यॉफ़री मोडहाउसः *Calcuttaa*) कि नया बंगाल आंदोलन का हीरो हेनरी डिरॉज़ियो जो एक अंग्रेज़ी फ़र्म के किसी अफ़सर का बेटा था और जिसने कलकत्ते के प्राइवेट इंगलिश स्कूलों में तालीम पाई थी, रॉबर्ट बर्न्स, फ्रांसीसी इन्क़लाब और अंग्रेज़ी रैडिकलिज़म से सख़्त मुतास्सिर था। वह शे'र कहता था और एक नज़्म में नवेरेनू के मक़ाम पर यूनानियों की आज़ादी की जंग में कामयाबी का उसने पुरजोश अन्दाज़ में ख़ैर मक़दम किया था। उसके संपादन में बंगाली अख़बार प्रकाशित होते थे और उस वक़्त जब वह बहुत कम उम्र था हिन्दू कॉलेज में आला दर्जों को पढ़ाता था। उसके हामियों में ज़्यादातर उच्च जाति के हिन्दू थे, अंग्रेज़ी रंग में रंगे हुए। उसने उन सबको नास्तिक बना दिया। और ये अफ़वाह उन दिनों कलकत्ते के उच्च समाज में बहुत गर्म थी कि हिन्दू कॉलेज के छात्र प्रार्थना के वक़्त पवित्र ग्रंथों के बजाए इलियड की पंक्तियाँ पढ़ते थे और एक रोज़ एक लड़के से जब काली की मूर्ति के सामने सर झुकाने को कहा गया तो उसकी ज़ुबान से बस ये लफ़्ज़ निकले... गुडमॉर्निंग मादाम!

> ...उन्नीसवीं सदी के आख़िर का कलकत्ता बेहद मॉडर्न शहर था जिसमें अनगिनत कॉलेज थे और सियासी तहज़ीबें, तहरीकें और प्रेस व अख़बार। नए बंगाली नॉवलों में हिन्दू तहज़ीब की तहरीक का प्रचार किया जा रहा था। राजा सुरेन्द्र नाथ टैगोर ने हिन्दुस्तानी संगीत के पुनरावलोकन का सिलसिला शुरू कर रखा था। स्वामी विवेकानन्द यहाँ से बाहर जा कर युरोप और अमरीका में वेदान्त फ़लसफ़े का प्रचार कर रहे थे। मुल्क में हर तरफ़ सियासी और तहज़ीबी तहरीकों की चर्चा हो रही थी, काँग्रेस बदरूद्दीन तैय्यबजी और दूसरे लीडरों की क़यादत में बड़े-बड़े इजलास कर रही थी।
>
> कुर्रतुल ऐन हैदरः *आग का दरिया*

III

अक्टूबर 1905 में ब्रिटिश राज ने फ़ैसला किया कि बंगाल को दो हिस्सों में तक़सीम कर दिया जाए। एक जाना-बूझा डर इस फ़ैसले की बुनियाद था। सो बँटवारा हुआ। मशरिक़ी बंगाल में असम को मिला दिया गया। मग़रिबी हिस्से में बिहार, छोटानागपुर और उड़ीसा के बाशिन्दे ज्यों के त्यों जुड़े रहे। अब मशरिक़ी बंगाल में मुसलमानों की अक्सरियत हो गयी। मग़रिबी बंगाल में (कलकत्ते की आबादी) हिन्दू बंगालियों का बहुमत था, लेकिन वह बिहारियों, ओड़ियाओं और दूसरे मुहाजिरों से घिरे हुए थे। उनमें अगर कोई समानता थी तो बस मज़हब की। जबकि मशरिक़ी बंगाल के वासी मज़हबी एतबार के अलावा अपने रवैयों, मिज़ाज-ओ-तबीयत और अन्दाज़े-ज़िन्दगी के एतबार से कमो-बेश एक जैसे थे। बँटवारे का नतीजा ये हुआ कि ऊँची जाति के हिन्दुओं के भद्र लोग अपने एक बहुत बड़े हिस्से से कट कर रह गये। कलकत्ते के भद्र लोगों से ज़्यादा ब्रिटिश राज को डराने वाली सच्चाई और कुछ न थी। इस तक़सीम का मक़सद था एक ख़ौफ़नाक और शक्तिशाली सच्चाई को दो टुकड़ों में बाँट कर कमज़ोर कर देना।

लेकिन नतीजा ब्रिटिश राज की उम्मीदों के ख़िलाफ़ निकला। बँटवारे ने इंक़लाब की जिस चिंगारी को हवा दी थी वह धीरे-धीरे शोला बन गयी।

बँटवारे की शाम को कलकत्ता के टाउन हाल में एक आम सभा हुई। यह ऐलान किया गया कि अँग्रेज़ी सामानों का मुकम्मल बायकॉट होगा। स्वदेशी तहरीक ज़ोर पकड़ती गयी। नए स्कूल खोले गए जिनमें एक नई क़ौमी चेतना के प्रसार को बुनियादी मक़सद की हैसियत हासिल थी। अब तालीम के पाठ्यक्रम में जिस्मानी प्रशिक्षण के सबक़ भी शामिल कर लिए गए। बांग्ला अख़बार खुलकर ब्रिटिश राज की आलोचना करने लगे। अख़बारों की प्रकाशन संख्या में हैरतअंगेज़ इज़ाफ़ा होने लगा।

फिर तशद्दुद (हिंसा) की लहर जागी। कलकत्ते से दूर-दूर तक जगह-जगह बम बनाने के ख़ुफ़िया केन्द्र क़ायम हो गए। छोटे-छोटे सुव्यवस्थित जत्थों में नौजवान लड़के-लड़कियाँ छुप-छुपाकर निकलते और आज़ादी का यह नया हरबा इस्तेमाल करते। मग़रिबी दुनिया के अख़बारात में उनके हौसले को सराहा जाने लगा। यह गिरफ़्तार होते और सर झुकाए बग़ैर सज़ा क़ुबूल कर लेते। उन पर और उनसे तआवुन करने वाले आम इन्सानों पर ब्रिटिश राज की सख़्तियाँ बढ़ गईं। अख़बारों पर रोक लगा दी गयी। उनके संपादकों और प्रकाशकों को जेलख़ानों में डाल दिया गया। आए दिन सिक्योरिटी अफ़सर कलकत्ता यूनीवर्सिटी या छात्रों के ख़ुफ़िया अड्डों पर छापे मारते।

ब्रिटिश राज को अपनी भयानक भूल का कुछ अन्दाज़ा प्रिन्स ऑफ़ वेल्स के दौरे (1905-06) के वक़्त हुआ। इससे पहले बरतानवी सत्ता के मुहाफ़िज़ों ने ख़्वाब में भी नहीं सोचा था कि मामला उस वक़्त तक बिगड़ चुका था। उन्हें उम्मीद थी कि प्रिन्स ख़ुद जब अपनी रिआया के सामने जाएँगे तो सारा ग़ुस्सा और बेक़रारी ख़त्म हो जाएगी।

> ...कलकत्ते के सदर बाज़ार मे फ़ुटपाथ पर वह एक घण्टे से खड़े थे। बाज़ार में मुकम्मल हड़ताल थी लेकिन तमाशाइयों का हुजूम बन्द दुकानों के आगे घूम रहा था। बाज़ार के बीचोबीच रास्ता साफ़ था और दो ग़ैर मुल्की और मक़ामी पुलिस के आदमी खड़े थे। सड़क पर अंग्रेज़ फ़ौजी और पुलिस अफ़सर मोटर साइकिलों पर घूम रहे थे। प्रिन्स ऑफ़ वेल्स का जुलूस गवर्नमेण्ट हाउस से रवाना हो चुका था...
>
> ...अचानक शहज़ादे ने नज़रें ऊपर उठाईं और देखता रहा। फिर ज़रा सा गवर्नर की तरफ़ झुका। गवर्नर ने भी उसी सिम्त में देखा और उसके चेहरे पर सख़्त नागवारी के आसार पैदा हुए। उसने मुड़कर पीछे की तरफ़ निगाह दौड़ाई, फिर सामने देखा। सरों के मसनूई (कृत्रिम) दरख़्तों से बने हुए तक़रीबी (अस्थायी) गेट पर बर्क़ी रोशनी से लिखे हुए ये अल्फ़ाज़ बार-बार ज़ाहिर और ग़ायब हो रहे थे:
>
> "Tell your Mother, we are unhappy."
>
> ...अचानक प्रिंस के बराबर वाली गली से चन्द लोगों का एक गिरोह सामने आया। उनके जिस्म नंगे और स्याह थे और सर मुंड़े हुए थे। उन्होंने अपने पेटों पर बड़े-बड़े बोर्ड बाँध रखे थे जिन पर लिखा हुआ था :
>
> "Tell your Mother, we are unhappy."
>
> ...नईम अज़रा को थाम कर वापस चलने लगा। अज़रा का सर अभी तक उसके कन्धे पर टिका हुआ था। उल्टे लटके हुए बोर्डों के नीचे, एक दूसरे को थामे हुए वह चलते गए।
>
> — अब्दुल्ला हुसैन : *उदास नस्लें*

प्रिन्स के दिल को बहुत तक़लीफ़ पहुँची। इम्पीरियल कौन्सिल में वाइसराय के होम मेम्बर जॉन जंक्सन ने मशविरा दिया : तख़्ते-शाही को दिल्ली मुन्तक़िल (स्थानान्तरित) कर दिया जाए। कलकत्ता नाक़ाबिले-बरदाश्त होता जा रहा है। लोगों के हौसले इसी तरह पस्त होंगे। दिल्ली बहुत महफ़ूज़ है। पुराने वक़्तों में वहीं पाँडवों और कौरवों में एक लम्बी जंग छिड़ी थी। मुग़लों ने इसी दयार में बैठे-बैठे सारे हिन्दुस्तान पर हुकूमत की थी। कलकत्ता की फ़िज़ां में तशद्दुद है।

इस तरह तैयारियाँ शुरू हो गयीं। दिल्ली दरबार के इन्तज़ामात किये जाने लगे। सब कुछ बहुत ख़ामोशी से,

बहुत ख़ुफ़िया तरीक़े से तय किया गया। बस मुट्ठी-भर लोगों को मालूम था कि सत्ता का केन्द्र बदलने वाला है।

दिसम्बर 1911 की उस सुबह को मलिका ने चार हज़ार एक सौ उन्चास हीरों से सजा हुआ ताज पहन रखा था। सामने चमकते हुए लिबासों में बीस हज़ार अँग्रेज़ी और हिन्दुस्तानी फ़ौजियों के दस्ते थे। और पचास हज़ार राजे-महाराजे। ये दिल्ली दरबार का जश्न था। और जब बादशाह जॉर्ज ने ऐलान किया कि "हम अपनी रिआया को ये इत्तला देते हुए ख़ुशी का एहसास करते हैं कि हमने हुकूमते-हिन्दुस्तान का केन्द्र, कलकत्ते से हिन्दुस्तान की पुरानी राजधानी में मुन्तक़िल करने का फ़ैसला किया है" तो चन्द लम्हों के लिए मजमे पर पथरीली ख़ामोशी तारी रही। फिर देर तक तालियों की गूँज सुनाई देती रही।

उस रोज़ कलकत्ता मैदान में पाँच हज़ार फ़ौजियों ने एक शानदार परेड का मुज़ाहिरा किया था।

तशद्दुद-पसन्द नौजवानों ने, जो ग़ैर संवैधानिक तरीक़ों में पक्का यक़ीन रखते थे, एक मुख़्तसर वक़्त के लिए अपनी सरगर्मियाँ बन्द कर दीं। उनके चेहरों पर तशद्दुद की चमक थी।

लेकिन व्यापारियों और कारख़ानादारों की पंक्तियों में बेइत्मिनानी की एक लहर दौड़ गई। अब कलकत्ता वीरान हो जाएगा। दिल्ली सामान के वितरण का बहुत बड़ा केन्द्र है। अब सारा माल बम्बई और कराची की मण्डियों में पहुँचने लगेगा। हमने जो इतना बहुत सा कारोबार फैला लिया था और इतनी इमारतें खड़ी कर ली थीं, अब उनका क्या होगा? बड़े व्यापारियों और कारख़ानादारों में अक्सरियत अँग्रेज़ों की थी।

मक़ामी अख़बारात में हफ़्तों इस वाक़ये पर बहस जारी रही। कई अख़बारात अँग्रेज़ पूँजीवादियों के फ़ायदे की नुमाइन्दगी करते थे और हालात की इस अचानक करवट पर उनके होश गुम हो गए। *स्टेट्समैन* लिखता है, "वाइसरॉय और उनकी कौन्सिल ने ये फ़ैसला सूबे के एक भी मुमताज़ शख़्स की सलाह के बग़ैर चुपचाप कर लिया। और अब वह तवक़्क़ो करती है कि इस फ़ैसले से जिन लोगों की तौहीन हुई है वही उसे खुले दिल से क़ुबूल करें!"

बहरहाल, ये वाक़या ग़ुलाम पिछड़े इन्सानों के सामने अज़ीमुश्शान ब्रिटिश राज की हार का पहला इशारा था, एक ख़ात्मे का आग़ाज़, सिर्फ़ कलकत्ते की अँग्रेज़ बिरादरी के लिए नहीं बल्कि सारी अजनबी हुक्मराँ क़ौम के लिए। लन्दन की महफ़िलों में लोग सरगोशी के अन्दाज़ में एक दूसरे से इस वाक़ये का ज़िक्र करते और उन्हें ख़याल आया कि जिस रोज़ पाया-ए-तख़्त कलकत्ते से हटाया जाने वाला है वह दिन तो April Fool's Day होगा तो बहुतों के चेहरे पर एक ख़ुश्क, बेजान मुस्कराहट फैल गई।

माहौल बारूद की बू से बोझिल है।

महायुद्ध का नशा टूट रहा है। 1943, सर पर सूखा, बग़ैर बादल का आसमान, क़दमों के नीचे चटखती, टूटती, झुलसती बेआब ज़मीन। या सैलाब, तूफ़ान और मुकम्मल तबाही। कलकत्ता सामूहिक मौत को कई नाम देता है। सैलाब, साइक्लोन, सूखा।

> अकाल आया, ख़ौफ़नाक, हौलनाक, लड़खड़ाता हुआ, लफ़्ज़ बयान से आजिज़ हैं। मालाबार में, बीजापुर में, उड़ीसा में, और उन सबसे ज़्यादा बंगाल के ज़रख़ेज़ और मालदार राज्य में, ख़ुराक की क़िल्लत के सबब मर्द और औरतें और नन्हे बच्चे हर रोज़ हज़ारों की तादाद में मरते हुए। कलकत्ता के महलों के सामने वह अचानक गिरते और मर जाते, बंगाल के अनगिनत गाँवों में, कच्ची मिट्टी के झोंपड़ों में, देहाती इलाक़ों की सड़कें और खेत उनकी लाशों से पटे पड़े थे। सारी दुनिया में लोग मर रहे थे या जंगलों में एक दूसरे की जान ले रहे थे; आम तौर पर एक फ़ौरी मौत, अकसर एक बहादुराना मौत, मौत किसी मक़सद की ख़ातिर, एक बामानी मौत, मौत जो हमारी दीवानी दुनिया में वाक़यात की एक बेरहम दलील दिखाई देती थी, ज़िन्दगी का अचानक ख़ात्मा जिसे हम न तो मोड़ सकते थे, न इस पर हमारा क़ाबू था। मौत हर तरफ़ ख़ासी आम थी।
>
> लेकिन यहाँ मौत का कोई अर्थ न था, कोई दलील न थी, न कोई ज़रूरत, ये इन्सान की नाक़ाबिलियत और संगदिली का नतीजा थी, इन्सानी हाथों का कारनामा, एक सुस्त चाल से

> रेंगती हुई दहशतनाक चीज़ जिससे निजात का कोई रास्ता न था, ज़िन्दगी मौत में गुम होती हुई, मिलती हुई, वीरान आँखों और उदास जिस्मों से मौत झाँकती हुई, जबकि अभी पल भर के लिए ज़िन्दगी उनमें ठहरी हुई होती...
>
> — जवाहर लाल नेहरू : *डिस्कवरी ऑफ़ इण्डिया*

कलकत्ता और उसके इर्द गिर्द के इलाक़ों में उन दिनों भी अकाल पड़ा था जब इंगलिस्तान के कारख़ाने सोना उगल रहे थे। उन्हें ईंधन चाहिए था। लोग कहते हैं कि पिछले अकाल भी इन्सानी हाथों का कारनामा थे। 1760 और 1770 में अकाल के बाद महामारी भी फैली थी।

कलकत्ता युनिवर्सिटी के जीवविज्ञान विभाग के एक अन्दाज़े के मुताबिक़ 1943 के अकाल ने बंगाल में कम से कम चौंतीस लाख जानें लीं। और जब कलकत्ता के *स्टेट्समैन* ने कलकत्ता की सड़कों पर मरने वाली फ़ाक़ाकश औरतों और बच्चों की डरावनी तस्वीरें पेश कीं तो एक सरकारी नुमाइन्दे ने यूँ बयान दिया कि हालात से डराया जा रहा है।

कलकत्ता की सड़कें और गलियाँ तो लाशों से ढँक गयी थीं और दूसरी तरफ़ ऊँचे तबक़े के दस हज़ार इन्सान अपनी तफ़रीहात में मगन थे। रक़्स, दावतें, शोर-शराबा और क़हक़हे। ग़ल्ला एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए गाड़ियाँ बहुत कम उपलब्ध थीं। रेस के मैदानों में घुड़दौड़ का तमाशा उसी तरह जारी था और आला नस्ल के घोड़े मुल्क के दूर-दराज़ इलाक़ों से रेल के विशेष वैगनों में लाए जाते थे। कलकत्ता की दो दुनियाओं का द्वन्द्व इससे पहले कभी इतना खुल कर सामने नहीं आया था। उन दोनों दुनियाओं में फ़ितरी फ़ासले न थे, लेकिन ये एक दूसरे के लिए अजनबी थीं।

बंगाल में अब तक सात बार अकाल पड़ चुका था। 1770 के अकाल ने उसकी एक तिहाई आबादी का सफ़ाया कर दिया था। बंगाल के गाँव, कुरिये, बस्तियाँ वीरान होती जाती थीं, गली कूचों में ख़ाक उड़ रही थी और उधर इंगलिस्तान में शहर बस रहे थे। औद्योगिक क्रांति के शोर में ब्रिटिश राज के एक दूर के राज्य का सारा दर्द गुम हो गया था। फ़ासलों के बावजूद वाक़यात में कैसे अनदेखे रिश्ते पैदा हो जाते हैं।

अप्रैल 1943 में सड़क पर पड़ी हुई एक लाश का पोस्टमॉर्टम किया गया तो पता चला कि उसके पेट में सिर्फ़ घास थी।

भूख के ख़ौफ़ का ये हाल था कि मज़हबी बंधन भी नज़र-अन्दाज़ कर दिये गये। कट्टर हिन्दू, जो आम हालात में ग़ैर जात के किसी शख़्स के हाथ से पानी का एक प्याला भी क़ुबूल न करता, मुसलमानों के हाथ से खाना वसूल कर रहा था, मुसलमान हिन्दुओं से ग़िज़ा लेते थे। कहते हैं कि माँ-बाप बच्चों का व्यापार करने लगे। खुलना की एक औरत ने अपनी बेटी पन्द्रह रुपये में बेच दी। बर्दमान में एक तीन साल की बच्ची का मोल पाँच रुपये लगा। मालदा में भूगर्दी मण्डल ने अपने इकलौते बेटे मुज़फ़्फ़र, उम्र तीन साल, को अपने हाथों क़त्ल कर दिया क्योंकि वह उसका पेट नहीं भर सकता था और उसके ख़ानदान ने हफ़्ते भर से ग़िज़ा की शक्ल भी न देखी थी। एक बूढ़ा मछेरा इतना कमज़ोर हो चुका था कि जब भूखे कुत्ते उस पर झपटे तो वह अपनी रक्षा न कर सका था।

उधर लन्दन के हाउस ऑफ़ कॉमन्स में ब्रिटिश राज का एक मुहाफ़िज़ हुकूमत की इज़्ज़त व महानता की हाज़िरीन को इत्तेला दे रहा था, "हिन्दुस्तान में इस वक़्त अनाज की कोई कमी नहीं। गेहूँ की फ़सल शानदार हुई है। मसला जो कुछ भी है, तक़सीम की व्यवस्था में ख़राबी के सबब है"।

टैगोर ने ये सूरते-हाल आने से सिर्फ़ तीन साल पहले अपने आप से पूछा था : "ये लोग कैसा भयानक हिन्दुस्तान, कैसी डरावनी बेबसी अपने पीछे छोड़ जाएँगे, जिस दिन इनकी सत्ता का स्रोत ख़ुश्क होगा, उनके पीछे सिर्फ़ कीचड़ और गंदगी बाक़ी रह जाएगी...!"

लन्दन के हाउस ऑफ़ कॉमन्स में ब्रिटिश राज की इज़्ज़त-ओ-अज़मत के उस मुहाफ़िज़ का ये कहना कि सारा फ़साद तक़सीम की व्यवस्था में ख़राबी का है, सच्चाई का एक पहलू भी रखता है!

दौलत की तक़सीम, सहूलियतों की तक़सीम, मौक़ों और फ़ायदों की तक़सीम, दुःख, उलझन और परेशानियों

की तक़सीम, धूप और साए की तक़सीम, उजाले की तक़सीम, अँधेरे की तक़सीम, फ़ितरत की अताकर्दा ख़ैरात और तादाद की तक़सीम... ग़रज़ कि ज़िन्दगी और वजूद का दायरा-दर-दायरा सच्चाइयों का कौन सा निज़ाम है जिसमें गड़बड़ नहीं है!

शहर! तू इस दरिया के किनारे अपने गंदे पांव पसारे लेटा है
ग़लीज़, बदकार, बेरहम!
मैं तेरी दीवानाकुन ख़्वाहिशों से बेज़ार हूँ
शहर! लोग कहते हैं कि तू बदकार है ...-
और मैंने अपनी आँखों से देखा है कि सरे-शाम तेरी रंगे चेहरे वाली औरतें
लड़खड़ाते जवानों को निगल जाती हैं
शहर! तू अपने गन्दे लिबास कब उतारेगा?
शहर! लोग कहते हैं कि तू बेरहम है!
रात गए, जब तेरे दानिशवर रिक्शा लिए खुदकुशी करने जाते हैं
... तू ख़ामोश रहता है
शहर! लोग कहते हैं, मरने के बाद मेरी हड्डियों से बटन बनाएँगे
शहर! तेरे मकानों की दीवारों पर ये कैसी तहरीरें हैं?
शहर! मैंने महीनों से अख़बार नहीं पढ़ा

— ऐन रशीद

मेरे सामने तस्वीरों की एक किताब है (*कलकत्ता* : जोज़ेफ़ लैलीवुड)। रघुवीर सिंह ने कैमरे की आँख से शहर को देखा है, शहर के अन्दर छुपे हुए शहर को। ये तस्वीर ख़बरनामे नहीं, रोज़मर्रा की जानी-बूझी, चखी-बरती सच्चाइयाँ हैं।

IV

कुछ लफ़्ज़ जो मूर हाउस और जोज़ेफ़ लैलीवुड से लिए गए हैं :

> मैं कलकत्ता के एक पुराने सफ़र में एक पुलिस ऑफ़िसर से उसके ज़िले में इन्क़लाबी दहशत पसन्दी के मौज़ू पर गुफ़्तगू कर रहा था, मैंने महसूस किया कि गुफ़्तगू पर उसी तरीक़े से विलियम मैकपीस थैकरे पर जा पड़ी जो कलकत्ता ही में पैदा हुआ था। पुलिस ऑफ़िसर ये जानना चाहता था कि मेरा थैकरे का पसन्दीदा नॉवेल कौन सा है। मैंने जब ये कुबूल किया कि मैंने सिर्फ़ Vanity Fair पढ़ रखा है, उसने इसरार किया कि Henry Esmond भी हासिल करूँ। मैं अब भी ये सोच कर हैरान होता हूँ कि अँग्रेज़ी दुनिया में किसी पुलिस स्टेशन पर इस क़िस्म का मशविरा कलकत्ता के सिवा और कहाँ मिल सकता है!
>
> — जोज़ेफ़ लैलीवुड : *कलकत्ता*

ये शहर इन्द्रियों से ज़्यादा दिमाग़ पर हमलावर होता है और इसके असरात अनदेखे जरासीम (कीटाणु) की सूरत दूसरों के वजूद में दाख़िल हो जाते हैं। शायद इसीलिए अब से 70-75 साल पहले ये जुमला मिसाल के तौर पर इस्तेमाल होता था कि "आज कलकत्ता जो कुछ सोचता है, कल वही कुछ सारा हिन्दुस्तान सोचेगा"।

पता नहीं ये महज़ खुशगुमानी है या मुस्तक़बिल की धुन्ध में लिपटी हुई कोई अटल सच्चाई। मगर इसमें शक नहीं कि कलकत्ता ज़ेहनी एतबार से दुनिया का शायद सबसे मुस्तैद शहर है। किपलिंग ने बहुत पहले कहा था... "इस शहर में ग़रीबी और ग़ुरूर साथ-साथ दिखाई देते हैं। ये ग़ुरूर नतीजा है एक गहरे शऊर और सामूहिक ज़िम्मेदारी के एहसास का।"

जोज़ेफ़ लैलीवुड ने एक और तजुरबे का ज़िक्र किया है :

"तनहा भिखारी जिसे मैंने मुसलसल इनाम से नवाज़ा है अधेड़ उम्र का एक मर्द है। एक हाथ से महरूम, सर पर बारीक तराशे हुए सफ़ेदी लिए हुए बाल, दाँत पान से लाल, ग्रैण्ड होटल के सामने वह टैक्सी का दरवाज़ा खोलता बन्द करता है और इनाम पाता है। 1967 के आम चुनाव के ज़माने में एक रोज़ टैक्सी में बैठते वक़्त मैंने पूछा... 'तुमने वोट दिया?' उसका जवाब था... 'हाँ साहब! काम पर आने से पहले मैं वोट डाल आया था।' उस रोज़ मैंने उसे समाज के एक रुक्न (सदस्य), एक शहरी की हैसियत से पहचाना।

"और ग़रीबी और ग़ुरूर के साथ-साथ कलकत्ता हिन्दुस्तान का सबसे दौलतमन्द शहर भी है, हालाँकि ये दौलतमन्दी इसके वजूद से वाबस्ता तरह-तरह की उलझनों के सबब अब दम तोड़ रही है। दहशत का यह जिन्न रात में कभी भी आ सकता है। जब गन्दी बस्तियों और फ़ुटपाथों से फ़ाक़ाज़दा इन्सानों की भीड़ उठ खड़ी हो और ख़ुशहाल तबक़े के लिए क़हर बन जाए। ये तबक़ा चन्द हज़ार लोगों का है जबकि फ़ाक़ाकशों की तादाद लाखों में है। "मुफ़लिस परछाइयाँ चुपचाप अपने अंधेरों से नमूदार होंगी और ख़ुशहाल इन्सानों को उनकी कारों से बाहर घसीट निकालेंगी। और जब तक वह लोग अपनी रक्षा की सूरतें मुहय्या करें, मुफ़लिस परछाइयाँ अपनी संख्या की अधिकता के कारण उन्हें क़ाबू में कर लेंगी। इस डरावने ख़्वाब का सिगनल वह रिक्शेवाले देंगे जिन्होंने कलकत्ता में ख़ुशहाल इन्सानों को खींचने में जानवरों जैसी ज़िन्दगियाँ गुज़ार दीं..." कुछ लफ़्ज़ जो लेनिन से मन्सूब किए जाते हैं, यूँ हैं कि "आलमी इन्क़लाब का रास्ता पेइंचिग, शंघाई और कलकत्ते से होकर जाता है।"

कलकत्ता हिन्दुस्तान की पहली रियासती राजधानी है, जहाँ 1967 के आम चुनाव के बाद चौदह सियासी पार्टियों की मिली-जुली हुकूमत ने ये ऐलान किया कि पश्चिमी बंगाल के मंत्रियों की हिफ़ाज़त के लिए अब पुलिस दरकार न होगी। मुख्यमंत्री की तन्ख़्वाह ग्यारह सौ पचास रुपये महीना से घटाकर सात सौ कर दी गई और दूसरे मंत्रियों की तन्ख़्वाहें नौ सौ रुपये से कम करके पाँच सौ रुपये महीना मुक़र्रर कर दी गईं। ऐलाननामे में ये भी कहा गया कि गवर्नमेण्ट सेक्रेटेरियट के दफ़्तरों में अब एअरकन्डीशनिंग जैसी अय्याशियों के लिए कोई जगह न होगी (लू से हर साल सैकड़ों मौतें होती हैं)। हुकूमत का भार सँभालने के बाद ही कलकत्ता मैदान के एक आम जलसे में एक अठारह नुकाती प्रोग्राम पेश किया गया था जिसमें किसानों की बदहाली, ज़मीनी इस्लाहात, तालीमी ढाँचे में सुधार और तरक़्क़ी और आज़ादी की ताक़तों को पाबन्दियों से रिहा करने पर ख़ास तवज्जो दी गयी थी।

अवाम के इन्क़लाबी मूड का इज़हार किसानों और बेज़मीन मज़दूरों के अलावा कारख़ानों के मुलाज़िमीन और औद्योगिक मज़दूरों की सरगर्मियों से भी होता है। लेकिन सवाल शायद इतने आसान नहीं होते जितनी आसानी से उनके जवाब सोच लिए जाते हैं।

शहर की दीवारें नारों से ढक गई हैं, एक बेरहम इन्क़लाबी समझ के साथ।

"बंगाल के बेटों! नींद से जागो और दहाड़ो शेर की तरह!" इस नारे के साथ ही हल्के नीले रंग में माओ का एक पोर्ट्रेट लगा हुआ है। सुर्ख़ परचम के पीछे जुलूस दिखाई देते हैं, हाथों में लाठियाँ, भाले, तीर और कमान सँभाले। "माओ त्से तुंग ज़िन्दाबाद" के नारे लगाता हुआ जुलूस किसी गोदाम के सामने रुकता है और अनाज का हर दाना लूट लेता है। ये नक्सलबाड़ी का छुपा हुआ परदा है।

कलकत्ता युनिवर्सिटी प्रमाणपत्रों की तक़सीम के मामले में दुनिया की सबसे बड़ी फ़ैक्ट्री कही जाती है। दुनिया के सबसे बाग़ी छात्र भी यहीं मिलते हैं। दुनिया में सेकेण्ड हैण्ड किताबों का सबसे बड़ा बाज़ार भी इसी के इर्द-गिर्द है। लगभग आधे मील की दूरी तक कॉलेज स्ट्रीट की दुकानें किताबों से भरी पड़ी हैं। आस पास की दर्जन भर सड़कों पर भी किताबों के स्टॉल हैं, फ़ुटपाथों पर किताबों का ढेर।

दुनिया के किसी भी इलाक़े में इन्सानी समाज किसी परेशानी में हो, कलकत्ता का दिल ज़रूर धड़कता है। चेतना की आज़ादी और जागृति के सबसे पुरजोश मुहाफ़िज़ों का शहर! आन्द्रे मालरो ने जब फ्रांस के सांस्कृतिक कार्य मंत्री की हैसियत से दुनिया की पुरानी फ़िल्मों के सबसे बड़े आर्काइव्ज़ ला सिनेमा थैकयू के सेक्रेटरी-जनरल हेनरी लॉग लुई की मुद्दते-मुलाज़िमत के ख़ात्मे की धमकी दी तो बंगाल के बुद्धिजीवियों ने कलकत्ता की सड़कों पर ज़बरदस्त मुज़ाहिरा किया। वियतनाम की जंग के ज़मान-ए-उरूज का एक मशहूर नारा था। अमारनाम,

तोमारनाम, वियतनाम!

वह सड़क जिस पर अमरीकी कौन्सिलख़ाना है, कलकत्ता कॉरपोरेशन ने उसका नाम हैरिंगटन स्ट्रीट से बदल कर हो चि मिन्ह स्ट्रीट रख दिया है।

बुद्धिजीवियों, फ़नकारों, शायरों, कॉफ़ी हाउसों और लिटिल मैगज़ीनों का शहर! नुमाइश, संगीत सभाएँ, संवाद, गोष्ठियाँ। आए दिन पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं और उसी रफ़्तार से बन्द भी हो जाती हैं।

सत्यजीत रे की एक फ़िल्म का एक रोमानी नौजवान किरदार कहता है :

"मैं कलकत्ते से बाहर एक पल भी न रह सका!"

"क्या मतलब?" उसका भाई पूछता है।

"यहाँ ज़िन्दगी है! बाक़ी सारी जगहें मुर्दा हैं!"

कलकत्ता मैदान जिसके फैलाव और हरियाली के सबब कुछ लोग इसे शहर के फेफड़े मानते हैं क्योंकि घनी बस्तियों के जंगल में हवा के झोंके यहीं आज़ादाना सफ़र करते हैं... हफ़्ते की शामों को आवारागर्द शायरों, ब्रह्मो नौजवानों और नफ़ी व इन्कार को हर्फ़े-इक़रार की सूरत पलकों में सजाए हुए फ़नकारों की टोलियाँ मैदान के मुख़्तलिफ़ गोशों में जमी दिखाई देती हैं... Alienation, कमिटमेंट, प्रोटेस्ट, रोज़ पुराने विचार टूटते हैं और नए ढाले जाते हैं। बीस-बीस, तीस-तीस की टुकड़ियों में, कोई अपनी ताज़ा नज़्म सुना रहा है, कहीं कोई नई धुन सुनाई जा रही है। कहीं किसी नए पेंटिंग पर लम्बी गुफ़्तगू जारी है...

और जब गिन्सबर्ग ने कलकत्ता का सफ़र किया तो नीम तला श्मशान घाट पर चिता जलने के मंज़र ने उसकी इन्द्रियों पर ऐसा असर डाला था कि उसने कई महीने भूखी पीढ़ी के शायरों की सोहबत में गुज़ारे। जब यहाँ से वापस अपने मुल्क को गया तो उसे याद आया कि एक ही हलक़े के शायर भी कलकत्ता के कॉफ़ी हाउसों, सड़कों पर एक दूसरे से लड़ते फिरते हैं। मिले राय चौधरी के नाम उसके एक ख़त में ये जुमला भी आया कि "कोई तो ऐसी बुनियाद हो जिस पर तुम सब एक दूसरे का तहफ़्फ़ुज़ कर सको! उस वक़्त ये अकेली बुनियाद अदबी इज़हार की आज़ादी का मसला है।"

लेकिन इज़हार की इस आज़ादी के इस्तेमाल ने एक शायर को अदालत के दरवाज़े तक पहुँचा दिया। हँगरी जनरेशन का एक अंक अलबर्ट हॉल, कॉलेज स्ट्रीट कलकत्ता के काफ़ी हाउस में तक़सीम हुआ, सवालात पर बहस हुई, मिले राय चौधरी ने अपनी एक नज़्म पढ़ी। और अदालत ने फ़ैसला किया कि नज़्म फ़हश (अश्लील) है। कॉफ़ी हाउस जैसी जगह पर जहाँ नौजवान लड़के-लड़कियाँ जमा होते हों, जिनके ज़ेहन बहुत जल्द बाहरी असर क़ुबूल करते हैं। "इस क़िस्म की फ़हश नज़्म पढ़ना फ़हाशी को हवा देना है और अदब वही है जो अच्छे मूल्यों के प्रचार और तर्जुमानी का फ़र्ज़ अदा करे।"

> अब ऐसे लफ़्ज़ नहीं रह गए जिन्हें हम अदब में इस्तेमाल न कर सकें, न ऐसे मनाज़िर (दृश्य) हैं जिन्हें हम बयान न कर सकें। हिन्दुस्तानी समाज जहाँ फिल्मों में बोसा लेना मना है और जहाँ कामुक अंगों के ज़िक्र पर पाबन्दी है, इसके प्रति घृणा या उस पर हँसना हिमाक़त होगी। तुम्हारे सामने एक तवील (लम्बा), मुश्किल मरहला है।
>
> — हॉवर्ड मैकॉर्ड का ख़त मिले राय चौधरी के नाम,
> वॉशिंगटन : 22 मई 1965

अभी कलकत्ता के सामने कई मरहले हैं, एक लम्बा जाँ गुदाज़ सफ़र, मसाइल का एक सिलसिला कि कलकत्ता की कहानी पूरे हिन्दुस्तान की कहानी है, या मुख़्तसर लफ़्ज़ों में तीसरी दुनिया की कहानी।

...अनगिनत रौशन, रूह पर बोझ बने सवालात का शहर!

...कुछ लोग कहते हैं कि कलकत्ता ही उनका जवाब भी है... !

— क़ुर्रतुल ऐन हैदर : *आग का दरिया*
अनुवादक : रिज़वानुल हक़